योगेन्द्र मुरारी

बनाम

उत्तर प्रदेश का राज्य.

8 अगस्त, 1988

[ललित मोहन शर्मा और अन्य एन.डी. ओझा, जे.जे.]

राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980: धारा 3(2) - देरी के बाद पारित होने पर हिरासत आदेश को तकनीकी रूप से रद्द नहीं किया जाएगा। विचार किए जाने वाले मामले की परिस्थितियाँ - आरोप है कि हिरासत में लेने वाला प्राधिकारी अदालत द्वारा जमानत आदेश को विफल करने के लिए हिरासत में लेने का आदेश दे रहा है - विचार- न्यायालय द्वारा - बिगड़ती कानून व्यवस्था की स्थिति - गवाहों द्वारा न्यायालय में उपस्थित होकर न्याय प्रशासन में सहायता करने का साहस न होना।

याचिकाकर्ता हत्या के प्रयास की दो घटनाओं में शामिल था जिससे सार्वजनिक व्यवस्था की समस्या पैदा हुई। तीसरी घटना में याचिकाकर्ता ने अपने साथियों के साथ मिलकर एक व्यक्ति की हत्या कर दी। जब चुनौती दी गई तो पार्टी ने बम फेंके और याचिकाकर्ता ने अंधाधुंध गोलीबारी की। इस घटना ने सार्वजनिक व्यवस्था को गंभीर रूप से परेशान कर दिया। तीनों घटनाओं में से प्रत्येक के संबंध में याचिकाकर्ता के खिलाफ

आपराधिक मामले दर्ज किए गए थे, लेकिन याचिकाकर्ता के खिलाफ सबूत सामने नहीं आ रहे थे।

प्रासंगिक परिस्थितियों पर विचार करने के बाद जिला मजिस्ट्रेट इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि याचिकाकर्ता को जमानत मिलने की संभावना है, और चूंकि उनका विचार था कि यदि याचिकाकर्ता को हिरासत में नहीं लिया गया, तो वह न्यायिक पूर्व गतिविधियों में शामिल होगा। सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए, जिला मजिस्ट्रेट ने राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3(2) के तहत हिरासत का आदेश दिया।

हिरासत के आदेश को निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी गई है: (1) केवल तीसरी घटना को सार्वजनिक व्यवस्था की समस्या से जोड़ा जा सकता है और हिरासत के आधार पर पहली दो घटनाओं का उल्लेख आदेश को खराब बनाता है; (2) तीसरी घटना के चार महीने से अधिक समय बाद पारित आदेश को केवल अनुचित देरी के आधार पर रद्द किया जाना चाहिए: (3) इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता की जमानत अर्जी का विरोध नहीं किया गया था, जिला मजिस्ट्रेट के पास कोई नहीं था याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा करने के न्यायालय के आदेश को विफल करने की दृष्टि से उसे हिरासत में लेने का अधिकार क्षेत्र; (4) प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को हिरासत में लेने में उसके साथ अवैध रूप से भेदभाव किया था जबकि अन्य को स्वतंत्र छोड़ दिया गया था; (5) संबंधित

अभिलेखों को निरोध आदेश पारित करने से पहले जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष नहीं रखा गया; (6) याचिकाकर्ता के अनुरोध पर काउंटर केस के माध्यम से दायर आवेदन की प्रति उसे नहीं दी गई थी; और (7) केंद्र सरकार द्वारा याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया और उसका निस्तारण नहीं किया गया।

याचिका खारिज करते हुए अभिनिर्धारित किया गया:

(1) विवादित आदेश को रद्द नहीं किया जा सका क्योंकि हिरासत के आधार में पहली दो घटनाओं का भी उल्लेख किया गया था, खासकर जब पहली घटना सार्वजनिक व्यवस्था की समस्या पैदा करती हुई प्रतीत हुई। (255 बी-सी)

(2) कुछ देरी के बाद पारित होने पर हिरासत के आदेश को तकनीकी रूप से रद्द नहीं किया जाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में परिस्थितियों पर विचार करना आवश्यक है कि क्या देरी को संतोषजनक ढंग से समझाया गया है, जो इस मामले में किया गया है। [255 डी]

(3) निरोध आदेश और शपथ पत्र का अवलोकन वर्तमान मामले में जिला मजिस्ट्रेट यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट करते हैं कि जमानत के आदेश को विफल करने के लिए कार्य नहीं किया। उनका विचार था कि रखे गए अभिलेखों से प्रकट होने वाली संपूर्ण परिस्थितियों के संबंध में उनसे पहले,

याचिकाकर्ता को जब जमानत पर रिहा किया गया तो सार्वजनिक व्यवस्था की समस्या में सृजन की संभावना थी। [256 सी-डी]

(4) याचिकाकर्ता और अन्य की भूमिकाएँ समान नहीं थीं और उनके भविष्य के आचरण के बारे में उचित आशंका प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होनी चाहिए जो अलग-अलग व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न थीं। हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की ओर से केवल इस आधार पर इस संबंध में एक समान निर्णय लेना गलत होता कि सभी संबंधित व्यक्ति एक आपराधिक मामले में आरोपी के रूप में एक साथ शामिल थे। [256 जी-एच)

(5) हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने इस आरोप से इनकार किया है कि प्रासंगिक सामग्री उसके सामने नहीं रखी गई थी और उक्त प्राधिकारी को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है। [257 ए-81]

(6) यह नहीं माना जा सकता कि याचिकाकर्ता के प्रति पूर्वाग्रह था अपने ही आवेदन की प्रति की सेवा न होना। (257 बी)

(7) याचिकाकर्ता द्वारा उल्लिखित तारीख में त्रुटि लिपिकीय प्रकृति की थी, और केंद्र सरकार ने, वास्तव में, याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर विधिवत विचार करने के बाद उसे खारिज कर दिया। (257 ई)

शिब्बन लाल सक्सेना बनाम यूपी राज्य, [1954] एससीआर 418; के. अरुणा कुमारी बनाम आंध्र प्रदेश सरकार, [1988] 1 एससीसी 296:

राजेंद्रकुमार नटवरलाल शाह बनाम गुजरात राज्य, [1988] 3 एससीसी 153; मालेदाथ भारतन मलयाली बनाम पुलिस आयुक्त, एआईआर 1950 बॉम। 202: अलीजान मियां और अन्य बनाम जिला मजिस्ट्रेट, धनबाद, [1983] 3 एससीआर 939 और पूनम लता बनाम एम.एल. वधावन, [1987] 4 एससीसी 48, संदर्भित।

मूल क्षेत्राधिकार: 1988 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 259

(भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत)

याचिकाकर्ताओं के लिए बी. दत्ता, अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल और सुश्री ए. सुभाषिनी।

प्रतिवादियों की ओर से योगेश्वर प्रसाद और दलवीर भंडारी।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

शर्मा, जे.

1. रिट याचिकाकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत वर्तमान आवेदन में राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3(2) के तहत पारित दिनांक 7.12.1987 के अपने हिरासत के आदेश को चुनौती दी है। अनुच्छेद 226 के तहत असफल होने से इलाहाबाद उच्च न्यायालय में चले गए।

2. जिला मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता को दिए गए आधार में तीन घटनाओं का उल्लेख किया है: (i) याचिकाकर्ता पर आरोप है कि उसने श्री आजम को मारने के इरादे से अपनी रिवॉल्वर से गोली चलाई थी, लेकिन वह बाल-बाल बच गया। शाम 5.00 बजे हुए इस हमले के परिणामस्वरूप हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के अनुसार, 17.12.1986 को, "पूरे क्षेत्र में आतंक फैल गया और आस-पास के इलाके में जिन दुकानदारों की दुकानें थीं, उन्होंने दहशत और भय के कारण अपनी दुकानें बंद कर दीं। इस घटना ने सार्वजनिक व्यवस्था की समस्या पैदा कर दी।" (i) कहा जाता है कि याचिकाकर्ता ने 21.6.1987 को अजीज नाम के एक अन्य व्यक्ति को मारने के लिए एक और गोली चलाई थी, जो बाल-बाल बच गया, और (ii) 27.7.1987 को, लगभग 7.45 बजे याचिकाकर्ता ने अपने साथियों के साथ मिलकर श्री अजीज की लखनऊ जिला जेल के सामने हत्या कर दी। वहां मौजूद लोग डर के मारे भाग गये। जेल अधिकारियों ने जवाबी कार्रवाई की और याचिकाकर्ता ने एक हथगोला फेंक दिया। दोबारा चुनौती दिए जाने पर, पार्टी ने बम फेंके और याचिकाकर्ता ने अपनी पिस्तौल से अंधाधुंध गोलीबारी की। इस घटना ने सार्वजनिक व्यवस्था को गंभीर रूप से परेशान कर दिया। इलाके में फैली दहशत का विवरण मैदान में उल्लिखित है।

3. तीनों घटनाओं में से प्रत्येक के संबंध में याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज किए गए थे, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि

याचिकाकर्ता के खिलाफ सबूत सामने नहीं आ रहे थे, हालांकि कई व्यक्तियों ने धारा आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए अपने बयानों द्वारा दिनांक 27.7.1987 की तीसरी घटना के अभियोजन संस्करण का समर्थन किया था। हालाँकि, याचिकाकर्ता हिरासत में था और उसने जमानत के लिए याचिका दायर की थी। जिला मजिस्ट्रेट प्रासंगिक परिस्थितियों पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि याचिकाकर्ता को आपराधिक न्यायालय द्वारा जमानत मिलने की संभावना थी और चूंकि उनका विचार था कि यदि याचिकाकर्ता को हिरासत में नहीं लिया गया, तो वह गतिविधियों में शामिल हो जाएगा। सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए हिरासत का आदेश दिया गया।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री आर.के. गर्ग ने तर्क दिया है कि हिरासत का आदेश कई मायनों में दोषपूर्ण है। विद्वान वकील ने तर्क दिया कि चूंकि आधार में उल्लिखित तीन घटनाओं में से केवल एक को ही सार्वजनिक व्यवस्था की समस्या से जुड़ा माना जा सकता है, इसलिए आदेश को खराब माना जाना चाहिए और इसके अलावा यह जिला मजिस्ट्रेट और उच्च न्यायालय के लिए भी गलत था। कोर्ट ने पहली दो घटनाओं का जिक्र किया है। इसके अलावा, चार महीने से अधिक समय पहले हुई तीसरी घटना के कारण पारित आदेश को केवल अनुचित देरी के आधार पर रद्द किया जाना चाहिए। आगे यह कहा गया कि आदेश ख़राब

हो गया था क्योंकि आपराधिक न्यायालय में याचिकाकर्ता की जमानत याचिका का राज्य द्वारा विरोध नहीं किया गया था; और किसी भी दृष्टि से जिला मजिस्ट्रेट के पास याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा करने के आपराधिक न्यायालय के आदेश को विफल करने की दृष्टि से याचिकाकर्ता को हिरासत में लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। जुलाई की घटना के बारे में पहली सूचना रिपोर्ट का हवाला देते हुए बताया गया कि याचिकाकर्ता के अलावा 14 लोगों को मामले में आरोपी बनाया गया था और प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता को हिरासत में लेने में उसके साथ अवैध रूप से भेदभाव किया है, जबकि अन्य को छोड़ दिया गया है। यह भी कहा गया कि हिरासत का आदेश पारित करने से पहले सभी प्रासंगिक रिकॉर्ड जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष नहीं रखे गए थे और याचिकाकर्ता के अनुरोध पर काउंटर केस के माध्यम से दायर आवेदन की एक प्रति भी उसे नहीं दी गई थी। अंत में यह सुझाव दिया गया कि प्रतिवादी के उत्तर को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर केंद्र सरकार द्वारा विचार ही नहीं किया गया और उसका निस्तारण नहीं किया गया।

5. उच्च न्यायालय ने यह तय करना आवश्यक नहीं समझा है कि याचिकाकर्ता को दिए गए आधारों में उल्लिखित पहली दो घटनाएं सार्वजनिक व्यवस्था की समस्या के लिए संदर्भित है या नहीं क्योंकि

तीसरा आधार स्वयं आदेश को बनाए रखने में सक्षम है। यद्यपि श्री गर्ग ने संकेत दिया कि उनके विचार में अधिनियम में धारा 5ए के प्रावधान लागू किये गये हैं 1984 में किए गए संशोधन को अधिकारहीन माना जाना चाहिए और शिब्बन लाल सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मामले में की गई टिप्पणियों का हवाला दिया जाना चाहिए। और आगे.. [1954] एससीआर 418, उन्होंने हमें इस बिंदु पर निर्णय लेने के लिए आमंत्रित नहीं किया और सुझाव दिया कि हम इस पहलू पर कोई भी टिप्पणी करने से बच सकते हैं, क्योंकि प्रश्न का निर्णय एक बड़ी पीठ द्वारा किया जा सकता है। चूँकि उपरोक्त मामले में न्यायालय के समक्ष अधिनियम में वर्तमान अधिनियम की धारा 5ए के अनुरूप कोई प्रावधान नहीं था, इसलिए निर्णय याचिकाकर्ता के लिए कोई मदद नहीं कर सकता है। हालाँकि, जहाँ तक 17 दिसंबर, 1986 की पहली घटना का सवाल है, ऐसा प्रतीत होता है कि इसने सार्वजनिक व्यवस्था की समस्या पैदा कर दी है। किसी भी दृष्टि से आक्षेपित आदेश को इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता कि दूसरी घटना या उस मामले में पहली और दूसरी दोनों घटनाएं सार्वजनिक व्यवस्था की गड़बड़ी से संबंधित नहीं थीं।

6. हमें इस दलील में भी कोई दम नहीं दिखता कि विलंब के कारण विवादित आदेश ख़राब है। यह सच है कि जिस आधार पर जिला मजिस्ट्रेट को हिरासत का आदेश पारित करना पड़ा, वह जुलाई में उपलब्ध हो गया

और आदेश केवल दिसंबर में पारित किया गया, लेकिन यह मान लेना सही नहीं है कि हिरासत का आदेश कुछ समय बाद पारित होने पर तकनीकी रूप देरी से रद्द कर दिया जाएगा। (के. अरुणा कुमारी बनाम आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य, 1988 देखें) 1 एससीसी 296 और वहां उल्लिखित मामले) यह पता लगाने के लिए प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में परिस्थितियों पर विचार करना आवश्यक है कि देरी को संतोषजनक ढंग से समझाया गया है या नहीं। वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता हिरासत में था और उसके अवैध गतिविधियों में शामिल होने की कोई आशंका नहीं थी, जब तक कि आपराधिक न्यायालय द्वारा जमानत दिए जाने का समय नहीं आ जाता, तब तक उसे हिरासत में रखने की आवश्यकता नहीं थी। साथ ही पूछताछ भी चल रही थी। इस पहलू को हिरासत आदेश में ही स्पष्ट किया गया है और जिला मैजिस्ट्रेट ने अपने हलफनामे में भी बताया है और यह स्पष्ट है कि कार्यवाही करने में उनकी ओर से कोई अनुचित देरी नहीं हुई है। इसके अलावा, इस तरह की देरी और संविधान के अनुच्छेद 22(5) के प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों के अनुपालन में देरी के बीच अंतर है, जैसा कि राजेंद्र कुमार नटवरियल शाह बनाम गुजरात राज्य और अन्य, [1988] 3 एससीसी 153 में बताया गया है। यह यहां विशेष रूप से प्रासंगिक है क्योंकि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए ऐसे कृत्यों के प्रति उसकी प्रवृत्ति को दर्शाया गया है जिससे जनता को परेशान होने की संभावना थी। हमें जिला मजिस्ट्रेट

द्वारा इस संदर्भ में पहली दो घटनाओं का उल्लेख करने में कोई आपत्ति नहीं दिखती, खासकर जब पहली घटना सार्वजनिक व्यवस्था की गड़बड़ी से संबंधित हो।

7. अब तक यह आरोप है कि याचिकाकर्ता की जमानत की प्रार्थना का विरोध नहीं किया गया, काउंटर एफिडेविट में इसका जोरदार खंडन किया गया है। जिला मजिस्ट्रेट की इस आशंका का अर्थ यह नहीं है कि इस संबंध में प्रार्थना स्वीकार कर ली जाएगी निर्विरोध जिला मजिस्ट्रेट को इस तथ्य के कारण प्रतिकूल आदेश की उम्मीद थी कि घटना के गवाह अपने पहले के बयानों का समर्थन करने में अनिच्छुक दिखाई दे रहे थे। स्थिति की अच्छी तरह से सराहना की जा सकती है क्योंकि यह सामान्य ज्ञान है कि देश में बिगड़ती कानून व्यवस्था की स्थिति और आरोपी व्यक्तियों की बढ़ती आक्रामक डराने-धमकाने वाली मुद्राओं के कारण, गवाह अदालत के समक्ष जाकर न्याय प्रशासन की सहायता करने में साहस जुटाने में विफल हो रहे हैं। कानून की अदालत यह बताएगी कि उन्होंने क्या देखा या सुना है।

8. याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया कि आपराधिक मामले में याचिकाकर्ता को दी गई जमानत को विफल करने के उद्देश्य से हिरासत आदेश पारित किया गया था। मालेदाथ भारतन मलयाली बनाम पुलिस आयुक्त एआईआर 1950 बॉम्बे 202 में टिप्पणियों पर भरोसा

किया गया था। हमारे सामने मामले में हिरासत आदेश और जिला मजिस्ट्रेट के हलफनामे का अवलोकन, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट करता है कि उन्होंने ऐसा नहीं किया था। जमानत आदेश को विफल करने का कार्य करें। उनका विचार था कि उनके सामने रखे गए रिकॉर्ड से सामने आने वाली संपूर्ण परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा किए जाने पर सार्वजनिक व्यवस्था की समस्या पैदा होने की संभावना थी। प्रासंगिक सामग्रियों पर विचार करने पर जिलाधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे। याचिकाकर्ता को आधार सहित दस्तावेजों की प्रतियां दी गईं। किसी अभियुक्त को जमानत मिलने के तुरंत बाद या ऐसे समय में जब उसे जमानत मिलने की संभावना हो, उसके खिलाफ हिरासत का आदेश पारित करने की गुंजाइश पर इस न्यायालय द्वारा कई फैसलों में विचार किया गया है। (अलीजान मियां और अन्य बनाम जिला मजिस्ट्रेट, धनबाद, [1983] 3 एससीआर 939; पूनम लता बनाम एम.एल.. वधावन और अन्य, [1987] 4 एससीसी 48, और कई अन्य मामले) और हम इस बिंदु पर फिर से चर्चा करना आवश्यक नहीं समझते हैं। यह सच है कि ऐसे मामलों में आदेश की वैधता की जांच करने में बहुत सावधानी बरती जानी चाहिए, जो कि उसी आरोप पर आधारित है जिस पर आपराधिक अदालत द्वारा मुकदमा चलाया जाना है, और तदनुसार हमने पूरे मामले पर अपना उत्सुकतापूर्वक विचार किया है। मामले की परिस्थितियाँ लेकिन आक्षेपित आदेश में कोई दोष नहीं पाते हैं।

9. याचिकाकर्ता की इस आधार पर भेदभाव की शिकायत में कोई दम नहीं है कि अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों को हिरासत में नहीं लिया गया है। याचिकाकर्ता और अन्य की भूमिका समान नहीं है और उनके भविष्य के आचरण के बारे में उचित आशंका प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होनी चाहिए जो अलग-अलग व्यक्तियों में भिन्न होती है। हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की ओर से केवल इस आधार पर इस संबंध में एक समान निर्णय लेना गलत होता कि सभी संबंधित व्यक्ति एक आपराधिक मामले में आरोपी के रूप में एक साथ शामिल हैं।

10. याचिकाकर्ता की यह दलील कि सभी प्रासंगिक सामग्री जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष नहीं रखी गई और उस पर विचार नहीं किया गया, अस्पष्ट शब्दों में दी गई है और स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है। हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने अपने जवाबी हलफनामे में आरोप से इनकार किया है और हमें उस पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं दिखता है। विद्वान वकील ने आगे आग्रह किया कि याचिकाकर्ता को क्रॉस-केस के रूप में उनके अनुरोध पर दायर आवेदन की एक प्रति प्रदान नहीं की गई थी और इसलिए, वह अपना प्रतिनिधित्व प्रभावी ढंग से करने में पूर्वाग्रह से ग्रसित थे। हमें इस तर्क में कोई दम नहीं दिखता क्योंकि यह नहीं माना जा सकता कि याचिकाकर्ता को अपने ही आवेदन की प्रति न मिलने से पूर्वाग्रह था।

11. जहां तक ऊपर उल्लिखित अंतिम बिंदु का संबंध है, यह तर्क दिया गया था कि चूंकि याचिकाकर्ता ने 22.12.1987 को अपना प्रतिनिधित्व दायर किया था और केंद्र सरकार के बयान के अनुसार, उसने किसी अन्य तारीख के कुछ प्रतिनिधित्व का निपटारा किया था, इसलिए यह माना जाना चाहिए कि वह अभ्यावेदन पर विचार नहीं किया गया और निस्तारण नहीं किया गया। हमें केंद्र सरकार द्वारा उल्लिखित तारीख में त्रुटि के कारण याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए अनुमान में कोई योग्यता नहीं मिलती है क्योंकि मामला श्री शिव बसंत, उप सचिव, गृह मंत्रालय, सरकार के जवाबी हलफनामे से स्पष्ट हो गया है। भारत ने कहा कि यह याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व था जिसका निपटारा कर दिया गया और बताई गई त्रुटि आकस्मिक थी। हम इस बात से संतुष्ट हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा उल्लिखित तारीख में त्रुटि लिपिकीय प्रकृति की थी और वास्तव में, केंद्र सरकार ने विधिवत विचार करने के बाद याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को खारिज कर दिया था।

12. परिणाम में, हमें याचिकाकर्ता की ओर से दबाए गए किसी भी बिंदु में कोई योग्यता नहीं मिली और रिट आवेदन खारिज कर दिया गया है।

आर.एस.एस.

याचिका खारिज कर दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफ़िश्यल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" के जरिये अनुवादक की सहायता से किया गया है ।

अस्वीकरण - इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी आधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निष्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।